उपर्युक्त विवेचना से भूसन्नति के विषय में कोई निश्चित निष्कर्ष निकालना कठिन कार्य है। इसके विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद देखा जा चुका है। भूसन्नति के निर्माण तथा आकार आदि के विषय में मतान्तर भले हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि प्राचीन काल से ही भूसन्नतियों का अस्तित्व रहा है तथा इनसे ही वलित पर्वतों की उत्पत्ति हुई है।

12.3 कोबर का पर्वत निर्माणक भूसन्नति सिद्धान्त
(Kober's Geosynclinal Orogen Theory)

सामान्य परिचय (सिद्धान्त का उद्देश्य तथा प्रयुक्त शक्ति)

प्रसिद्ध जर्मन भूगर्भवेत्ता कोबर ने अपनी पुस्तक 'Der Bau der Erde' में भूपटल के विभिन्न भागों का क्रमबद्ध तथा तर्कपूर्ण विवरण उपस्थित किया है। कोबर ने अपने "भूसन्नति सिद्धान्त" के आधार पर न केवल भूपटल के पर्वतों की उत्पत्ति की व्याख्या उपस्थित की है वरन् पर्वत निर्माण के सभी पहलुओं (उनकी रचना, भूगर्भिक इतिहास तथा विकास आदि) का उल्लेख तो किया ही है साथ ही साथ महाद्वीपों तथा महसागरों की रचना एवं उनके विकास पर भी प्रकाश डाला है। कोबर का सर्वाधिक ध्यान प्राचीन दृढ़ भूखण्डों (ancient rigid masses) तथा जल के चलक्षेत्र अर्थात् भूसन्नतियों (orogen) में सम्बन्ध स्थापित करने पर था। कोबर ने बताया है कि महाद्वीपों का विकास इन्हीं दृढ़ भूखण्डों तथा भूसन्नतियों के सहयोग से हुआ है। इन दोनों के बीच सम्पर्क स्थापित करने वाली क्रिया पर्वतीकरण की रही है। अर्थात् दृढ़ भूखण्डों के प्रभाव से भूसन्नतियों से पर्वतों का निर्माण होता रहा तथा इनका योग दृढ़ भूखण्डों के साथ होने से इनका आकार बढ़ता गया तथा महाद्वीपों का विकास सम्भव हुआ। अत: यह कहा जा सकता है, कोबर ने अपने "भूसन्नति सिद्धान्त" के आधार पर पर्वतों के निर्माण की प्रक्रिया को सुलझाने का भरसक प्रयत्न किया है। वास्तव में *"कोबर का विशिष्ट पर्वत-निर्माण-स्थल, पर्वतों की उत्पत्ति की व्याख्या करता है"*। कोबर ने अपने सिद्धान्त में "मध्य पिण्ड" की कल्पना करके पर्वतीकरण को उचित ढंग से समझाने का प्रयास किया है तथा "मध्य पिण्ड" की यह कल्पना *"कोबर के विशिष्ट पर्वत निर्माण-स्थल की अच्छी तरह व्याख्या करती है"*। यद्यपि इस स्थल पर कई आलोचनायें उपस्थित की गई हैं तथा अनेक विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं तथापि इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कोबर के "मध्य पिण्ड" की सहायता से अल्पाइन तथा हिमालय पर्वतों की उत्पत्ति तथा विस्तार को सुविधापूर्वक समझाया जा सकता है। इसका उल्लेख आगे किया जायेगा।

कोबर के पर्वत निर्माण का "भूसन्नति सिद्धान्त" निश्चय ही संकुचन शक्ति पर आधारित है। जे० ए० स्टीयर्स के शब्दों में *"कोबर निश्चय ही संकुचनवादी हैं, जिसके अनुसार संकुचन सम्पीडनात्मक बल के लिये प्रेरणात्मक शक्ति प्रदान करता है।"* अर्थात् पृथ्वी में संकुचन होने से उत्पन्न शक्ति से ही दृढ़ खण्डों (अग्रदेश—forelands) में गति उत्पन्न होती है जिस कारण उत्पन्न सम्पीडन की शक्ति से भूसन्नति का मलवा वलित होकर पर्वत का रूप धारण कर लेता है। कोबर के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति के साथ ही उसमें तापीय ह्रास के कारण शीतलता आने से संकुचन प्रारम्भ हो गया तथा यह संकुचन पृथ्वी के प्रारम्भिक इतिहास से लगभग लगातार रूप में हो रहा है। इसी संकुचन के समय-समय पर पर्वत निर्माण के लिये उचित बल मिलता रहा है। इसी आधार पर कोबर ने पर्वत निर्माण में चक्रीय व्यवस्था का प्रतिपादन किया है—क्योंकि पृथ्वी में सदैव संकुचन होता रहा है। अत: समय-समय पर पर्वत निर्माण होता रहा। यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि संकुचन लगातार चला आ रहा है तो पर्वत निर्माण भी पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास के हर युग में होना चाहिये था, पर ऐसा नहीं है। इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि संकुचन से उत्पन्न शक्ति लम्बे समय तक संचयन के फलस्वरूप प्रबल होने पर ही पर्वत निर्माण कर सकती है।

सिद्धान्त के मुख्य आधार

कोबर महोदय के अनुसार जहाँ पर आज पर्वत दिखाई पड़ते हैं वहाँ पर प्रारम्भ में जल के चलक्षेत्र थे जिसे कोबर ने भूसन्नति या पर्वत-निर्माण-स्थल (orogen) बताया है। इन जलपूर्ण भूसन्नतियों के चारों तरफ प्राचीन दृढ़ भूखण्ड (rigid masses—kratogen) थे। ये ही दृढ़ भूखण्ड वर्तमान महाद्वीपों के विकास के प्रमुख आधारभूत तत्त्व थे। इन दृढ़ भूखण्डों के किनारों पर क्षेत्रीय पर्वतीकरण (भूसन्नति से) हुए हैं तथा प्रत्येक दृढ़ भूखण्ड का शनै: शनै: विस्तार हुआ है। कोबर ने समस्त ग्लोब का अध्ययन किया है तथा उनके विभिन्न भागों का उल्लेख किया है। कोबर ने मेसोजोइक युग में उत्तरी तथा दक्षिणी प्रशान्त भाग को अलग-अलग इकाई माना है जो कि मध्यवर्ती प्रशान्त भूसन्नति द्वारा अलग होते थे। कोबर के अनुसार, उत्तरी तथा दक्षिणी प्रशान्तीय भाग दो अलग-अलग अग्रदेश के रूप में थे जिनका बिलगाव भूसन्नति द्वारा होता था। बाद में अग्रदेश डूब गये तथा अब प्रशान्त महासागर के रूप में हैं। कोबर द्वारा ग्लोब के विषय में उपस्थित किये गये विवरण के आधार पर 6 प्रमुख भूभाग अलग किये जा सकते हैं तथा इनमें प्रमुख हैं—1. अटलांटिक तथा हिन्द महासागर के कुछ भाग के साथ अफ्रीका, 2. भारत तथा आस्ट्रेलिया का भूभाग, 3. यूरेशिया, 4. उत्तरी पैसफिक महाद्वीप, 5. दक्षिणी पैसफिक महाद्वीप, 6. दक्षिणी अमेरिका तथा अन्टार्कटिका।

इन दृढ़ भूखण्डों के बीच जल के चलक्षेत्र अर्थात् भूसन्नति थीं। कोबर के अनुसार भूसन्नतियाँ लम्बे तथा चौड़े जलपूर्ण गर्त थीं। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि कोबर की भूसन्नति, हाग महोदय की सँकरी भूसन्नति के विपरीत अधिक विस्तृत तथा चौड़ी थी। परन्तु

यदि सूक्ष्म दृष्टि से कोबर की भूसन्नति कल्पना, पर्वतों के विस्तार की दिशा तथा प्रणाली के विचार, दृढ़ भूखण्डों तथा भूसन्नतियों के सम्बन्ध एवं पर्वत निर्माण की प्रक्रिया पर विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कोबर के अन्तिम कार्य, **हाल-डाना** तथा **हाग** महोदय के विचारों के प्रतिफल हैं परन्तु कोबर ने भी अपना मौलिक विचार प्रस्तुत किया है। इसी कारण से प्राय: यह कहा जाता है– *"कोबर के विचार हाल एवं डाना की प्राचीन भूसन्नति परिकल्पना, जिसका आगे चलकर हाग ने सम्बर्द्धन किया, पर्वतीकरण पर उनके व्यक्तिगत विचारों के सम्मिश्रण हैं (जे० ए० स्टीयर्स)।*

यद्यपि वर्तमान समय तक भूगर्भवेत्ताओं ने चार प्रमुख पर्वतीकरण के युगों का पता लगाया है परन्तु कोबर ने छ: विभिन्न निर्माणकारी घटनाओं का उल्लेख किया है। इनमें से तीन घटनायें कैम्ब्रियन युग से पूर्व घटित हुई मानी जाती हैं तथा इनके विषय में बहुत कम ज्ञान प्राप्त है। केवल उत्तरी अमेरिका में झीलों (Great Lakes) के पास प्रीकैम्ब्रियन पर्वतीकरण के उदाहरण मिले हैं। वर्तमान भूगर्भवेत्ता कोबर के छ: पर्वतीकरण व्यवस्था से सहमत नहीं हैं। यद्यपि भूपटल पर पर्वत निर्माण समकालिक नहीं रहे हैं, परन्तु कोबर के अनुसार प्रत्येक पर्वत निर्माण के समय एक ही प्रकार की घटनाओं के क्रम की पुनरावृत्ति होती रही है। कोबर ने प्रत्येक पर्वतीकरण में एक सामान्य प्रक्रिया का अवलोकन किया है। अर्थात् प्राय: प्रत्येक पर्वत निर्माण के पहले भूसन्नति का निर्माण होता है जिसमें लगातार अवसादीय निक्षेप तथा भूसन्नति की तली का तलछटीय भार के कारण अवतलन होता है। अधिक जमाव हो जाने के बाद पर्वत निर्माण का समय आता है जिस समय भूसन्नति के दोनों पार्श्व अथवा अग्रदेश एक दूसरे की ओर खिसकने लगते हैं जिस कारण से मोड़ों का निर्माण होता है। पर्वतीकरण के समय ही अत्यधिक सम्पीडन के कारण ज्वालामुखी क्रिया तथा रूपान्तर की क्रिया होती है जिस कारण पर्वत की संरचना में जटिलता आने लगती है। पर्वत निर्माण के बाद उसका अनाच्छादन प्रारम्भ हो जाता है जिस कारण उत्थित पर्वत घिस कर पेनीप्लेन में परिवर्तित हो जाता है। इसके बाद पुन: भूसन्नति का निर्माण होता है तथा उपर्युक्त घटनाओं की पुनरावृत्ति होती रहती है। ये घटनायें प्राय: प्रत्येक युग के पर्वत निर्माण में क्रियान्वित होती रहती हैं। कोबर के अनुसार दो पर्वत निर्माणकारी युगों के बीच एक शान्तकाल होता है, जिस समय पर्वत निर्माण नहीं होता है।

सिद्धान्त की प्रक्रिया

कोबर के अनुसार पर्वत निर्मण की पहली अवस्था भूसन्नति के निर्माण की होती है तथा इस अवस्था में पर्वतों के निर्माण के लिये आवश्यक मंच की तैयारी होती है। इस अवस्था को **भूसन्नति अवस्था** (lithogenesis) कहा जा सकता है। ये भूसन्नतियाँ जलपूर्ण गर्त होती हैं जो कि अधिक लम्बी तथा विस्तृत होती हैं। प्रत्येक भूसन्नति के दोनों पार्श्वों पर दृढ़ भूखण्डों की स्थिति होती है। इन्हें कोबर ने अग्रदेश बताया है। पार्श्ववर्तीय थलीय भागों को अपरदन के कारक अपरित करते हैं तथा अपने साथ अपरदित पदार्थों का भूसन्नति में निक्षेपण करना प्रारम्भ कर देते हैं। यह अवसादी निक्षेपण लगभग एक निश्चित पद्धति के अनुसार होता है। इस प्रथम क्रिया को **अवसादीकरण** कहा जा सकता है। अवसादी जमाव के कारण भार में वृद्धि होने से भूसन्नति की तली का धँसाव होने लगता है। इस तरह एक लम्बे समय तक अवसादीय जमाव तथा भूसन्नति के धँसाव होते रहने से भूसन्नति अत्यधिक गहरी हो जाती है तथा उसमें पर्वत निर्माण के लिये आवश्यक तलछटी पदार्थों का जमाव हो जाता है।

द्वितीय अवस्था में पर्वत निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। इसे **पर्वत निर्माणकारी अवस्था** (orogenesis) कहा जा सकता है। भूगर्भिक हलचल (पृथ्वी के संकुचन से प्रेरित) होने के कारण भूसन्नति के दोनों स्थलीय अग्रदेश एक दूसरे के निकट खिसकने लगते हैं। यहाँ पर स्मरणीय है कि कोबर दोनों पार्श्वों के खिसकाव में विश्वास रखते हैं। यह हो सकता है कि एक पार्श्व के खिसकने की गति दूसरे की अपेक्षा अधिक रही हो। इस प्रकार भूसन्नति के दोनों पार्श्वों के सड़ासी की नोक के समान आमने-सामने पास आने से भूसन्नति के तलछट पर बल पड़ता है। अर्थात् अग्रदेशों के पास सरकने के कारण उत्पन्न सम्पीडन की शक्ति के कारण भूसन्नति के तलछट में सिकुड़न तथा मरोड़ पड़ने लगता है जिस कारण भूसन्नति का मलवा वलित होकर मोड़ों के रूप में बदल जाता है तथा भूसन्नति के दोनों किनारे वाले भाग पर दो पर्वत श्रेणियों का आविर्भाव होता है जिसे कोबर ने **रेन्डकेटेन** का नाम दिया।

कोबर के अनुसार भूसन्नति के तलछट का पूर्णत: या आंशिक रूप में वलित होना सम्पीडन की शक्ति पर आधारित होता है। यदि सम्पीडन की शक्ति सामान्य होती है तो केवल किनारे वाले भाग वलित होते हैं तथा दो पार्श्ववर्ती पर्वत श्रेणियों (randketten) का निर्माण होता है तथा बीच का भाग वलन की क्रिया से अप्रभावित रह जाता है। इस अप्रभावित भाग को कोबर ने **स्वाशिनवर्ग** (zwischengebirge) की संज्ञा प्रदान की है जिसे सामान्यत: मध्य पिण्ड कहा जाता है। कोबर ने अपनी **मध्य पिण्ड परिकल्पना** के लिए प्राय: सभी पर्वतों से उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इसका उल्लेख आगे चलकर विशद रूप में किया जायेगा। इस क्रिया के विपरीत जब सम्पीडन की शक्ति अत्यधिक तीव्र होती है तो भूसन्नति का समस्त तलछट वलित होकर मोड़ के रूप में बदल जाता है तथा कोई भी भाग वलन की क्रिया से अप्रभावित नहीं रह पाता है। इस अत्यधिक सम्पीडन के कारण दोनों अग्रदेश पूर्णरूपेण एक दूसरे के पास हो जाते हैं जिस कारण परिवलन मोड़ के कारण पर्वतीकरण में जटिलता आ जाती है। फलस्वरूप एक जटिल बनावट का सृजन होता है जिसे नार्ब (narbe) कहा जाता है।

स्विटजरलैण्ड स्थित आल्प्स में इस प्रकार की जटिल बनावट के दिग्दर्शन बड़े पैमाने पर होते हैं। इस प्रकार की बनावट (narbe) में एक मोड़ दूसरे मोड़ पर चढ़ जाते हैं जिसे **परिवलन मोड़** (recumbent folding) कहा जाता है। जब एक मोड़ की ग्रीवा

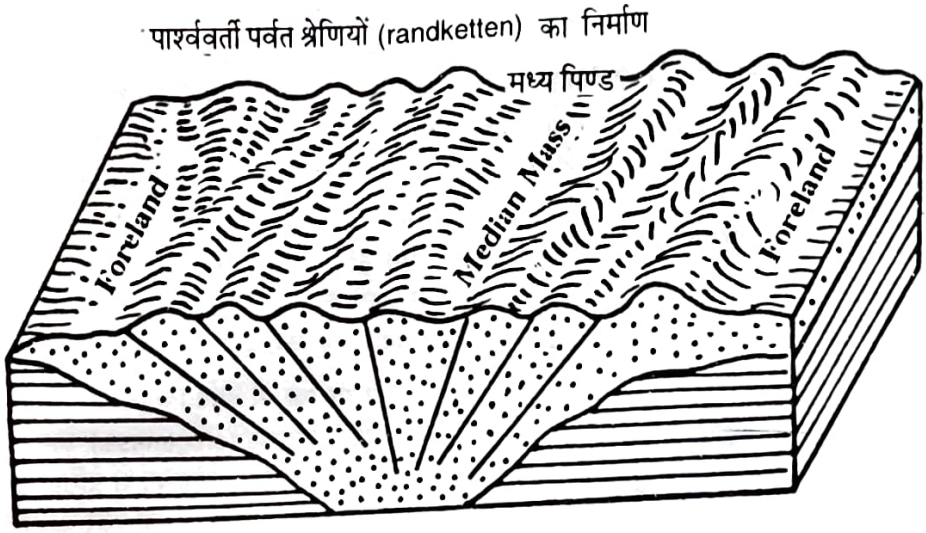

चित्र 12.6 : कोबर के पर्वत निर्माण के भूसन्नति सिद्धान्त का ब्लाक डायग्राम द्वारा प्रदर्शन।

टूट कर दूसरे मोड़ पर चढ़ जाती है तो ग्रीवाखण्ड (nappes) का निर्माण होता है। आल्प्स क्षेत्र में इस प्रकार की कई ग्रीवाखण्डों (हेल्वेटिक ग्रीवाखण्ड, पीनाइड ग्रीवाखण्ड, आस्ट्रायड ग्रीवाखण्ड तथा डिनाराइड ग्रीवाखण्ड) का पता लगाया जा चुका है। यहाँ पर एक बात स्मरणीय है कि मध्य पिण्ड पठार, मैदान या जलमग्न सागर या किसी भी उच्च भाग के रूप में हो सकता है।

कोबर ने दो प्रकार की गतियों (movements) का उल्लेख किया है। ऊपर वर्णित गति को पर्वत निर्माण गति (orogenic movement) कहा जाता है जिसका कार्य स्थल भूसन्नतियाँ (geosynclines—orogen) होती हैं जिनसे पर्वतों का निर्माण क्षैतिज गति से होता है। इसके विपरीत स्थलीय भागों पर घटित होने वाली गति को क्रैटोजनिक गति (kratogenic, from kratogen-stable areas) कहा जाता है। प्रथम गति में भूसन्नतियों में अधिक गहराई तक वलन तथा रूपान्तरण होता है परन्तु द्वितीय गति से स्थलीय भागों पर लम्बवत गति के कारण 'दरार' का निर्माण होता है। इसके अन्तर्गत सागरीय अतिक्रमणीय अवसाद (tamsgressional sediments) के बाह्य भाग के वलन को भी सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिये जूरा पर्वत को उपस्थित किया जा सकता है। आल्प्स का निर्माण प्रथम प्रक्रिया के अनुसार हुआ है।

कोबर का मध्य पिण्ड तथा पर्वत
(Median Mass and the Mountains)

कोबर ने अपने विशिष्ट मध्य पिण्ड (typical median mass) के आधार पर वलित पर्वतों की संरचना को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। कोबर के अनुसार मध्य पिण्ड के आधार पर यूरोप के अल्पाइन पर्वत शृंखला को भली-भाँति समझा जा सकता है। यहाँ पर संक्षेप में हम कोबर के अनुसार आल्प्स के निर्माण पर दृष्टिपात करेंगे। टेथीज भूसन्नति के उत्तर में यूरोप का स्थल भाग (सबसे दक्षिण में वारिस्कन पर्वत, ब्लाक पर्वत के रूप में) तथा दक्षिण में अफ्रीका का दृढ़ भूखण्ड था। भूगर्भिक हलचल के कारण दोनों अग्रदेश आमने-सामने खिंचने लगे तथा टेथीज का मलवा वलित होकर आल्प्स के रूप में परिवर्तित हो गया। अल्पाइन पर्वतों का सृजन, दो पार्श्विक सम्पीडन की शक्ति द्वारा हुआ है तथा कोबर ने बताया है कि विभिन्न पर्वत श्रेणियों में मोड़ की दो दिशायें (उत्तर तथा दक्षिण) स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। अफ्रीका के उत्तर की ओर सरकने से बेटिक कार्डिलरा, पेरेनीज, प्राविन्स श्रेणियाँ, मुख्य आल्प्स, कार्पेथियन्स, बालकन पर्वत तथा काकेसस का निर्माण हुआ है। इनमें वलन की दिशा उत्तर की ओर है। इसके विपरीत एटलस पर्वत, एपीनाइन्स, डिनाराइड्स, हेलेनाइड्स तथा टाराइड्स आदि पर्वतों का निर्माण यूरोपीय दृढ़ भूखण्ड के दक्षिण दिशा में प्रवाहित होने पर हुआ है तथा इनमें मोड़ों की दिशा दक्षिण की ओर है (चित्र 12.7)।

कोबर ने पर्वतीकरण तथा दृढ़ भूखण्डों के सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए बताया है कि पर्वतों की स्थिति तथा दिशा पर दृढ़ भूखण्डों ने पर्याप्त नियंत्रण रखा है। यूरोप के पर्वतीय क्षेत्र से इसके प्रमुख उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। आल्प्स का वक्राकार रूप वारिस्कन ब्लाक पर्वत, वासजेस तथा ब्लैकफारेस्ट एवं बोहेमियन पठार के कारण हुआ है। इसी प्रकार कार्पेथियन का झुकाव बोहेमियन पठार तथा कृष्ण सागर के पश्चिम में रूसी पठार

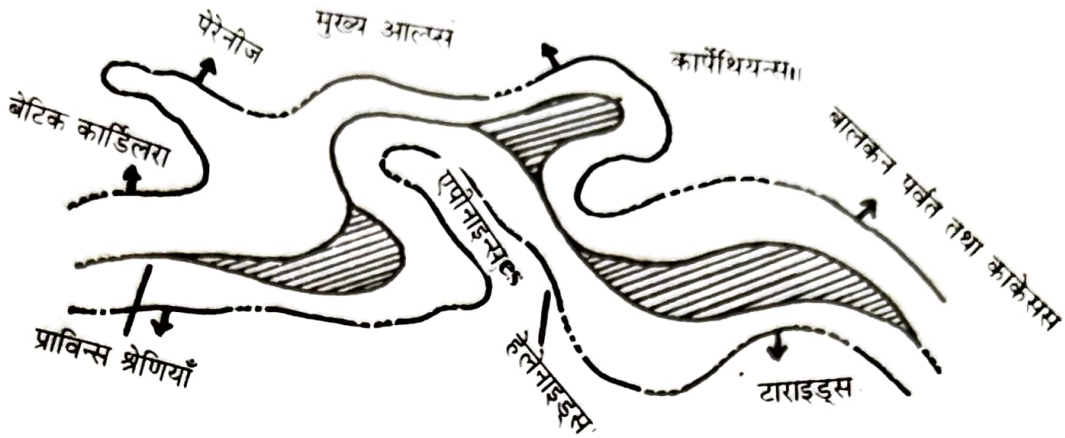

चित्र 12. 7 : अल्पाइन श्रेणियों की स्थिति (वलन की दिशा को तीरों द्वारा दर्शाया गया है)।

द्वारा नियंत्रित हुआ है। अब हम यूरोप के अल्पाइन पर्वत-क्रम के मध्य पिण्ड पर विचार करेंगे। अल्पाइन पर्वत श्रेणियों में रैण्डकेटेन के कई उदाहरण मिलते हैं तथा रैण्डकेटेन के मध्य, मध्य पिण्ड की स्थिति है। यहाँ पर स्मरणीय है कि अल्पाइन क्षेत्र में मध्य पिण्ड की स्थिति दो विपरीत दिशा में वलित श्रेणियों के बीच पाई जाती है। उदाहरण के लिए कार्पेथियन्स तथा दिनारिक आल्प्स के मध्य वलन से अप्रभावित भाग हंगरी का मैदान एक मध्य पिण्ड का खूबसूरत उदाहरण उपस्थित करता है। चित्र 12.7 में श्रेणियों के वलन की दिशा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कार्पेथियन में वलन की दिशा उत्तर तथा दिनारिक आल्प्स में दक्षिण है। इसी प्रकार पेरेनीज-प्रावेन्स श्रेणियों तथा एटलस तथा उसके पूर्वी भाग के बीच रूम सागर का भाग भी एक मध्य पिण्ड का ही उदाहरण है जो कि स्थल के डूब जाने के कारण जलमग्न होकर इस समय सागर के रूप में स्थित है। कोर्सिका तथा सार्डीनिया इसी मध्य पिण्ड के अवशिष्ट भाग हैं। इस क्षेत्र में भी मध्य पिण्ड की स्थिति दो विपरीत दिशा वाले वलन (पेरेनीज-प्रावेन्स उत्तर की ओर तथा एटलस दक्षिण की ओर) के मध्य है। मध्य पिण्ड का तृतीय उदाहरण बालकन पर्वतों के बीच रोडोप पठार से मिलता है। इसका पूर्व की तरफ भी विस्तार हुआ है जो इसका पूर्वी भाग अनातोलिया के पठार का रूप है जो कि पान्टिक तथा टारस श्रेणियों के बीच है। और पूर्व में ईरान का पठार भी एक मध्य पिण्ड का ही उदाहरण है जो एल्बुर्ज तथा जेग्रोस पर्वतों के मध्य स्थित है। इन मध्य पिण्डों का निर्माण दो रेण्डकेटेन के मध्य इसलिए हुआ है कि सम्पीडन की शक्ति सामान्य थी। इसके विपरीत जिन क्षेत्रों में सम्पीडन अति प्रबल था, वहाँ पर समस्त भूसन्नति का तलछट वलित हो गया है तथा कोई भी क्षेत्र वलन से अप्रभावित होकर मध्य पिण्ड के रूप में नहीं बच पाया है। उदाहरण के लिए स्विस आल्प्स में वलन तथा परिवलन के कारण दो रैण्डकेटेन एक दूसरे से मिल गये हैं जिससे **नार्बेन (narben)** बनावट का आविर्भाव हुआ है। इतना ही नहीं अधिक वलन के कारण ग्रीवाखण्डों का निर्माण हुआ है तथा कई स्थानों पर एक ग्रीवाखण्ड दूसरे पर आवृत्त हो गया है। उदाहरण के लिए आस्ट्रायड ग्रीवाखण्डों ने हल्वेटिक तथा पिनाइड ग्रीवाखण्डों का आच्छादन कर लिया है। इस प्रकार कोबर के मध्यपिण्ड के आधार पर आल्प्स पर्वत की उत्पत्ति तथा संरचना का भली प्रकार स्पष्टीकरण हो जाता है। कोबर ने इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों से मध्य पिण्ड के उदाहरण उपस्थित किये हैं। हिमालय तथा कुनलुन पर्वतों के मध्य तिब्बत का पठार एक मध्य पिण्ड ही है। कैरेबियन सागर भी एक मध्य पिण्ड का ही उदाहरण है जो कि वर्तमान समय में अवतलन के कारण जलमग्न हो गया है तथा इसकी स्थिति मध्य अमेरिकी शृंखला एवं पश्चिमी द्वीपीय चाप (West Indian Arc) के मध्य है। सियरा नेवादा तथा वासाच श्रेणियों के मध्य बेसिन रेंज-क्षेत्र की स्थिति एक मध्य पिण्ड के रूप में ही है। चित्र 12.8 से कोबर द्वारा प्रस्तुत हिमालय क्षेत्र के मध्य पिण्ड को समझाया जा सकता है।

कोबर ने संतुलन के सिद्धान्त में भी विश्वास प्रकट किया है। कोबर के अनुसार ऊंचे-ऊंचे पर्वत इसलिए भूपटल पर टिके हुये हैं कि उनके नीचे गहराई तक कम घनत्व वाला पदार्थ मिलता है। पृथ्वी के सिकुड़ने से उत्पन्न क्षैतिज गति के कारण पर्वत का निर्माण होता है। इस क्रिया में एक स्थान पर अत्यधिक मात्रा में पदार्थों का संग्रह हो जाता है जिस कारण स्थलीय भाग का अवतलन होने लगता है। फलस्वरूप भूसन्नति का निर्माण हो जाता है जिसमें पुनः जमाव तथा धँसाव होता रहता है तथा पर्वत निर्माण का चक्र चलता रहता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कोबर ने अपने भूसन्नति निर्माण सिद्धान्त तथा मध्य पिण्ड की परिकल्पना द्वारा पर्वत निर्माण की व्याख्या करने का एक सफल प्रयास किया है।

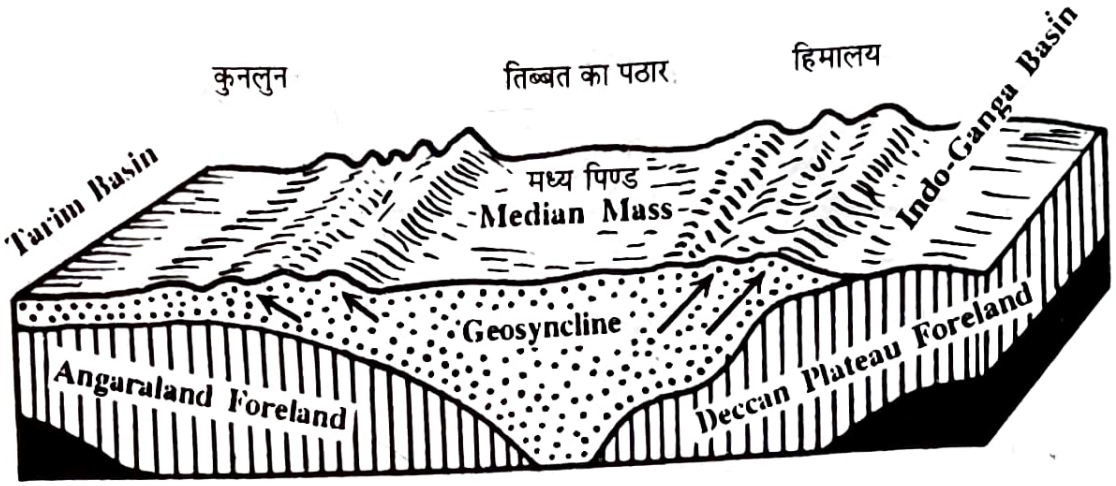

चित्र 12.8 : हिमालय तथा कुनलुन पर्वतों का (उत्तर से दक्षिण दिशा में) पार्श्वचित्र। कोबर के मध्य पिण्ड सिद्धान्त का (तिब्बत के पठार द्वारा) स्पष्टीकरण।

सिद्धान्त का मूल्यांकन

यद्यपि कोबर का पर्वत निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्त पर्वत निर्माण से सम्बन्धित कई तथ्यों का उचित उल्लेख करता है तथापि कुछ स्थलों पर कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं। 1. सर्वप्रथम समस्या है पर्वत निर्माण के लिए उत्तरदायी बल के सामर्थ्य की। यह समस्या प्राय: एक सामान्य समस्या है जिसका निराकरण किसी भी सिद्धान्त (प्लेट टेक्टानिक सिद्धान्त को छोड़कर) द्वारा अब तक नहीं हो पाया है। क्या पृथ्वी के सिकुड़न से उत्पन्न संकुचन की शक्ति इतनी प्रबल हो सकती है जिससे कि स्थल खण्ड खिसककर आल्प्स तथा हिमालय जैसे उच्च तथा विशाल पर्वतों का निर्माण कर सकते हैं? उत्तर नकारात्मक ही हो सकता है। कोबर द्वारा वर्णित बल द्वारा पर्वत निर्माण का होना उचित नहीं जान पड़ता है। 2. दूसरी समस्या है बल के कार्य करने की दिशा की। कोबर के अग्रदेश एक दूसरे की ओर खिसकते हैं तथा दोनों तरफ से आने वाली सम्पीडन की शक्तियों से वलन होता है। परन्तु स्वेस महोदय इस तथ्य से सहमत नहीं है। स्वेस के अनुसार भूसन्नति के केवल एक ही पार्श्व से बल आता है अर्थात् भूसन्नति का एक ही स्थलीय पार्श्व सरकता है तथा दूसरा पार्श्व अपने स्थान पर स्थिर रहता है। स्वेस ने सरकने वाले पार्श्व को पृष्ठप्रदेश (backland) तथा स्थिर पार्श्व को अग्रदेश बताया है। इस प्रकार अग्रदेश, पृष्ठ प्रदेश से आने वाले सम्पीडन में अवरोध उत्पन्न करता है जिस कारण भूसन्नति की तलछट वलित होकर पर्वत का रूप धारण कर लेती है। यदि हिमालय के निर्माण के विषय में कोबर तथा स्वेस के विचारों की सापेक्ष्य तुलना की जाय तो स्वेस का विचार सत्य के अधिक करीब लगता है। हिमालय का वक्राकार रूप तथा मध्यवर्ती भाग का दक्षिण की ओर झुकाव इस तथ्य को इंगित करता है कि सम्पीडन की शक्ति का आगमन उत्तर अर्थात् अंगारालैण्ड से हुआ तथा गोंडवानालैण्ड अपनी जगह पर स्थिर था। प्रायद्वीपीय भारत की स्थिरता तथा उसका उत्तरी आकार ही हिमालय के वक्राकार रूप के लिये उत्तरदायी बताये जा सकते हैं। प्लेट विवर्तन सिद्धान्त के आधार पर यह व्याख्या भी गलत है क्योंकि भारतीय प्लेट अब भी उत्तर की ओर सरक रहा है। अत: अब कोबर का विचार स्वेस की तुलना में अधिक सही है। 3. कोबर के सिद्धान्त के आधार पर पश्चिम-पूर्व दिशा में विस्तृत पर्वतों का स्पष्टीकरण आसानी से हो जाता है। खासकर आल्प्स तथा हिमालय के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त उचित लगता है परन्तु उत्तर से दक्षिण फैले पर्वतों (राकीज तथा एण्डीज) का स्पष्टीकरण इस सिद्धान्त के आधार पर अच्छी तरह नहीं हो सकता है। उत्तरी अमेरिका के पर्वतीकरण तथा भूगर्भिक विवरण के विषय में कोबर ने कई गलत धारणाओं का प्रतिपादन किया है। उदाहरण के लिये सियरा नेवादा के वलन तथा राकी पर्वत के उत्क्रम के समय के अन्तर का कोबर ने उल्लेख नहीं किया है। 4. पर्वतों का निर्माण भूसन्नतियों से हुआ माना गया है परन्तु इनके ठीक वितरण का समुचित उल्लेख नहीं किया गया है। उपर्युक्त कठिनाइयों के होते हुए भी कोबर के भूसन्नति सिद्धान्त में सत्यता के अंश अधिक हैं तथा इस सिद्धान्त को वर्तमान समय में मान्यता मिल रही है यदि इसे प्लेट विवर्तन सिद्धान्त के साथ मिलाकर देखा जाय।